कर्ज़दार से साहूकार

मिश्रित

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

निवेदन

यह पुस्तिका श्री घनश्यामदासजी बिड़ला के Our Sterling Balances नामक अंग्रेजी निबन्ध का अनुवाद है। स्टर्लिंग के रूप में हमारी जो रकम लन्दन में जमा होती जा रही है उसके सम्बन्ध में उठनेवाले एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर इस निबन्ध में दिया गया है। साथ ही, भारतवर्ष की पिछले सौ वर्षों की आर्थिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। ब्रिटिश सत्ता स्थापित होते ही हम इंग्लैंड के कर्जदार क्योंकर बन गए? हमारी वह कर्जदारी किस प्रकार दिन-दिन बढ़ती ही गई? अब इस महासमर ने हमें कैसे कर्जदार से साहूकार बना दिया है? हमारा जो धन लन्दन में इस समय जमा है या आगे होने वाला है उसके सम्बन्ध में हमारी इंग्लैण्ड से क्या मांग होनी चाहिए?—ऐसे अनेक प्रश्नों के विशेषज्ञ द्वारा दिये गए उत्तर इस पुस्तिका में हिन्दी पाठकों को मिल सकेंगे।

जिस समय यह अंगरेजी में लिखी गई थी उस समय की अपेक्षा आज हमारा स्टर्लिंग धन कहीं अधिक है। अभी उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि की ही संभावना है। पर उस रकम की घटा-बढ़ी से लेखक के तर्क या दलील में कोई फर्क नहीं पड़ सकता। स्टर्लिंग-सम्बन्धी विषय अभी बहुत समय तक हमारे लिए सामयिक रहने वाला है। आशा की जाती है कि उसकी जानकारी बढ़ाने में—लोगों को सचेत और सावधान कर देने में—यह पुस्तिका होगी।

—प्रकाशक

कर्जदार से साहूकार

हिन्दुस्तान जहा पहले कर्जदार था वहां अब साहूकार बन गया है। 'सहूकार' शब्द से खुशहाली जाहिर होती है, इसलिए सुनने में हमें यह सुखद मालूम हो सकता है, और हम आत्माभिमान का भी अनुभव कर सकते हैं। लेकिन, असलियत तो यह है कि आज भी हम वैसे ही गरीब बने हुए हैं जैसे पहले थे; बल्कि उससे भी ज्यादा। लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक जब हम कर्जदार थे तब तो काफी गरीब थे ही, लेकिन आज जब हमारा देश 'कर्जदार' से 'साहूकार' बन गया है, हम पहले से भी ज्यादा गरीब हो गए हैं। लोगों को शायद यह एक असंगत-सी बात मालूम होगी, लेकिन आगे चल कर इसकी सचाई स्पष्ट हो चलेगी।

आइए, सबसे पहले हम उन कारणों पर विचार करें, जिन्होंने हमें कर्जदार बना दिया था। कर्जदार से साहूकार तो हमारा देश हाल में ही हुआ; इसलिए इसपर हम बाद में विचार करेंगे।

जब कोई आदमी 'कर्जदार' हो जाता है तो इसके मानी यह होते हैं कि उसने दूसरे से कोई चीज कर्ज ली है। कर्जदारी का मतलब यह है कि कर्जदार आदमी को दूसरे से कर्ज के तौर पर कोई चीज मिली है; बिना दूसरे से कुछ पाए कोई योंही कर्जदार नहीं हो सकता। यही बात कर्जदार राष्ट्र और देश के सम्बन्ध में भी लागू होती है। इसलिए यह विचारने की बात है, कि आखिर हमारे देश को ब्रिटेन से क्या मिला था, जिससे यह उसका कर्जदार हो गया ?

इस सम्बन्ध में मैंने सन् १८६४ से—जिससे कुछ ही साल पहले ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से भारत की शासनसत्ता प्राप्त की थी—

अपने देश के विदेशी व्यापार के आंकड़ों की छानबीन की है; लेकिन उनसे यह साबित नहीं होता कि भारतवर्ष ने जितना माल भेजा उससे ज्यादा कीमत की चीज या सोना-चांदी उसने कभी मंगाई। हमने तो जितने रुपए का माल मंगाया उससे अधिक का ही अपने देश से इंग्लैण्ड को भेजा। सन् १८६४-६५ से लेकर १९२८-२९ तक हमने जितना माल मंगाया उससे २८०० करोड़ रुपये अधिक का माल भेजा। भुगतान में सिर्फ १४०० करोड़ का चांदी-सोना हमारे यहां आया। इससे साफ जाहिर है कि कर्जदार बनाने के लिए हमें इंगलैण्ड से कुछ नहीं मिला; बल्कि उलटा हमारा ही १४०० करोड़ रुपया उसके जिम्मे बकाया रहा। इस तरह हमें तो कर्जदार के बजाय साहूकार बनना चाहिए था; लेकिन हकीकत यह है कि हम कर्जदार बन गए, और अभी हाल तक कर्जदार ही बने रहे हैं।

आयात से निर्यात अधिक होने के कारण हमारे १४०० करोड़ रुपये इंगलैण्ड के जिम्मे पड़े रहने पर भी हम कर्जदार हो कैसे गए? इसका उत्तर इस बात से मिलता है, कि अपनी राजनीतिक पराधीनता के कारण हम न्याय करने के लिए उसे मजबूर नहीं कर सके। हमारे व्यापार के सिलसिले में बचत की इतनी बड़ी रकम होने के बावजूद भी अगर हमारा राष्ट्र कर्जदार बन गया तो इसका कारण यह था कि हमारी सरकार हमसे हुक्म लेने के बजाय उनके हुक्म पर ही चलती रही जो हमारी बचत की सारी रकम को बिना डकार लिए ही हजम कर बैठे। हमारी सरकार को बराबर इस बात का पता था कि इस देश को अपनी बचत की रकम के बदले में वास्तविक मूल्य की कोई चीज नहीं मिल रही है; फिर भी उसने इस अन्याय के प्रतिकार के लिए कुछ नहीं किया। आश्चर्य की बात यह है कि वह इतना भी स्वीकार करने को तैयार नहीं, कि ऐसा करके

सचमुच हमारे साथ कोई अन्याय किया गया है ! जब हमने अपने माल की कीमत मांगी, तो कह दिया गया कि इंगलैण्ड से इस देश को कुछ खास किस्म की सेवाएं मिल रही हैं, जिनका मूल्य उस माल की कीमत से कहीं ज्यादा है जो हम वहां भेजते हैं ! भारत-सरकार तो ब्रिटिश सरकार की ही एक मातहत शाखा ठहरी; उसका ग्रेट-ब्रिटेन के इस फतवे को मंजूर कर लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

ब्रिटेन की 'सेवाएं'

अब जरा इसपर भी गौर कीजिए कि वे सेनाएं क्या थीं, जो हमें इंगलैण्ड से मिली बताई जाती हैं। उनकी कहानी ज़रूर कुछ रोचक होती, अगर उनके लिए हमें अपना गाढ़ा पसीना और आंसू न बहाने पड़े होते ! कुछ उदाहरण लीजिए, जिससे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय से ही यदि हम इन सेवाओं की आलोचना करें तो उसके राज्य-काल में जो 'सेवाएं' की गईं उनमें प्रथम अफगान-युद्ध, बर्मा की दो लड़ाइयां और चीन, ईरान, नेपाल, लंका, मलका, सिंगापुर, जावा, केप कॉलोनी और मिश्र में की गई छोटी-मोटी फौजी कार्रवाइयों का शुमार होता है। इन सब पर होनेवाला अन्धाधुन्ध खर्च हिन्दुस्तान से ही वसूल किया गया है।

इसके बाद, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की समाप्ति के पहले हिन्दुस्तान को ४ करोड़ पौंड गदर को दबाने के हिसाब में देना पड़ा, और ३ करोड़ ७० लाख पौंड जो कम्पनी को उसकी पूंजी और मुनाफे के नुकसान के हर्जाने के नाम पर दिया गया वह भी हिन्दुस्तान के सिर पर लाद दिया गया ! ऐसी ही परिस्थितियों में साम्राज्य के दूसरे भागों के साथ दूसरी तरह का व्यवहार हुआ था। बोअर युद्ध का (जो इंगलैण्ड के खिलाफ एक तरह का गदर था) खर्च

दक्षिण अफ्रिका को नहीं देना पड़ा था। इसी तरह जब रॉयल नाइगीरिया कम्पनी के अधिकार खरीदे गए तो हर्जाना अफ्रिका से न दिलवाया जाकर ब्रिटिश खजाने से दिया गया। इस भेद-मूलक व्यवहार का कारण स्पष्ट है।

ब्रिटिश राजसत्ता के हाथों में शासनसूत्र चले जाने के बाद भी पुरानी परम्परा ज्यों-की-त्यों बनी रही। पहले की ही भांति माल की कीमत के बदले हमारे देश को जबरन 'सेवाएं' दी गईं। इनमें से कुछ हिन्दुस्तान की सीमा के बाहर लड़ी गई लड़ाइयां थीं—जैसे अबीसीनिया (१८६७), पेराक (१८७५), दूसरा अफगान युद्ध (१८७८), मिश्र (१८८२), सूडान (१८८५), और बर्मा की (१८८६)। इन लड़ाइयों के खर्च का बोझ हिन्दुस्तान के सिर पर लादने का कोई भी न्यायसंगत कारण नहीं होने पर भी, इनमें से प्रत्येक युद्ध ने हमारे देश के खर्च का बोझ बढ़ाया। इन खर्चों का भार इतना अन्यायपूर्ण था कि कई बार इंगलैण्ड के सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाले लोगों ने भी उसके विरोध में आवाज उठाई; लेकिन वह नक्कारखाने में तूती की आवाज-सी साबित हुई। उन विरोधों का कोई नतीजा नहीं निकला।

भारतीय इतिहास के पन्ने ऐसे आर्थिक अन्यायों के उदाहरणों से भरे पड़े हैं। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में जो अग्रगामी नीति (फारवर्ड पॉलिसी) बरती गई थी, उसपर होनेवाला जितना खर्च हिन्दुस्तान को देना पड़ा उसका अन्दाजा एक बार ७१॥ करोड़ रुपये लगाया गया था। इसमें १८७८-८० के अफगान-युद्ध का भी खर्च शामिल है। बर्मा को हिन्दुस्तान के साथ मिलाने में जो १०० करोड़ रुपए खर्च हुए वे भी हिन्दुस्तान के मत्थे मढ़े गए। इतना ही नहीं, बल्कि लन्दन में भारतीय दफ्तर रखने का

खर्च भी इसे ही देना पड़ा। ईरानी मिशन और चीन में कूटनीतिक और व्यापारिक प्रतिनिधियों के रहने के खर्च का बोझ भी हिन्दुस्तान पर ही रक्खा गया। अदन के शासन का खर्च भी कुछ वर्षों तक पूरा, और बाद को आंशिक रूप में, हिन्दुस्तान को देना पड़ा, यद्यपि यह तो ब्रिटिश साम्राज्य की एक चौकी थी। कहां तक गिनाया जाय, जब 'जंजीबार ऐण्ड मारिशस केबल' तथा 'रेड सी टेलीग्राफ कम्पनी' जैसी अंग्रेज कम्पनियों को ब्रिटिश सरकार ने आर्थिक सहायता दी, तो हिन्दुस्तान को भी उसका एक हिस्सा देने के लिए मजबूर किया गया, यद्यपि हिन्दुस्तान को इनसे कोई फायदा नहीं था। 'रेड सी टेलीग्राफ कम्पनी' १८५८ में स्थापित हुई थी, और ५० साल के लिए ब्रिटिश सरकार ने गारण्टी दी थी। टेलीग्राफ लाइन चालू होने के एक ही या दो दिनों के बाद वह टूट गई, पर गारण्टी के अनुसार सरकार को सालाना ३६,००० पौण्ड ४६ साल तक देने पड़े और हिन्दुस्तान को भी इसका एक हिस्सा देने के लिए बाध्य किया गया। फलतः यह अवधि समाप्त होने तक हिन्दुस्तान को ८,२६,००० पौण्ड से अधिक देने पड़े। 'जंजीबार ऐण्ड मॉरिशस केबल कम्पनी' मॉरिशस और सेकेलिस का बाहरी दुनिया से सम्बन्ध करने के लिए सैनिक कारणों से, बनी थी। उससे हिन्दुस्तान को कोई खास फायदा नहीं था। फिर भी उसे २० साल तक इस कम्पनी को सालाना १०,००० पौंड देने पड़े। इससे भी आश्चर्यजनक बात तो तब हुई, जब १८६८ में तुर्की सुलतान के लन्दन तशरीफ ले जाने पर इण्डिया आफिस में एक बड़ा नृत्य-समारोह हुआ और उसका खर्च भी हिन्दुस्तान को देना पड़ा। इतना ही नहीं, बल्कि ईलिंग के पागलखाने, जंजीबार मिशन के सदस्यों को उपहार और भूमध्यसागर के जहाजी बेड़े के खर्च का भी एक हिस्सा हिन्दुस्तान से वसूल किया गया।

हिन्दुस्तानकी सीमा से दूर लड़ी जानेवाली इन लड़ाइयों और अभियानों से हिन्दुतान का भला क्या वास्ता हो सकता था ? यह कैसे कहा जा सकता है कि ये कार्रवाइयां हिन्दुस्तान के हित के लिए हुई थीं ? हिन्दुस्तान का इनमें क्या स्वार्थ हो सकता था ? हिन्दुस्तान की इच्छा इस सम्बन्ध में किस तरह जानी गई ? इन सवालों का आज तक कोई जवाब देते नहीं बन पड़ा, तथापि इससे इस बात में कोई फर्क नहीं पड़ा कि हमें सिर्फ लड़ाइयों का खर्च ही नहीं देना पड़ा बल्कि उन लोगों की पेंशन की जिम्मेदारी भी लेनी पड़ी, जिन्होंने इनमें हिस्सा लिया और जिन्होंने हमारे स्वार्थों की रक्षा न कर हमारी कुसेवा ही की। नतीजा यह हुआ कि आयात से निर्यात अधिक रहने और अपने पक्ष में बचत होने पर भी, सन् १६२६ तक हम लोग इंगलैण्ड के ७० करोड़ पौंड के कर्जदार बन गए थे। लड़ाइयों की फिजूलखर्चियों आदि को पूरा करने के लिए हमपर भारी-भारी कर लगाए गए; और हमारे निर्यात में बची १४०० करोड़ रुपए की रकम देखते-ही-देखते काफूर हो गई ! यही नहीं, बल्कि हमपर १००० करोड़ रुपए के कर्ज का बोझ भी लाद दिया गया !

संक्षेप में यही हमारे कर्जदार होने की दर्दनाक कहानी है।

पासा पलटा

पर सन् १६२८-२६ के बाद से पासा पलटना शुरू हुआ।

व्यापार की मंदी ने इंगलैण्ड को स्वर्णमान (गोल्ड स्टैण्डर्ड) छोड़ने के लिए बाध्य किया। हिन्दुस्तानी रुपये का स्टर्लिंग से गंठबन्धन था, इस-लिए स्टर्लिंग का मूल्य गिरते ही रुपये की कीमत गिरी। इससे हिन्दुस्तान से सोने का प्रवाह विदेशों की ओर प्रारम्भ हुआ। हिन्दुस्तान सदियों से संचित सोने को बाहर भेजने लगा। उसका निर्यात खूब बढ़ा। इससे

पासा पलटा और हमारे देश की कर्जदारी दूर होने लगी। १९२९-३० से १९३८-३९ तक, दस साल के अन्दर, हिन्दुस्तान के निर्यात की बचत करीब ६०० करोड़ रुपए तक पहुँच गई। । इसमें १९३९-४० से १९४१-४२ के युद्धकालीन वर्षों में २१० करोड़ रुपए की और भी वृद्धि हुई। इसमें यदि बाकी महीनों के व्यापार की रकम और जोड़ दें, तो प्रत्यक्ष बचत १९२९-३० से आज की तारीख तक कोई ९०० करोड़ रुपए होगी।

हाल के वर्षों में माल और सेवा का कुछ 'अप्रत्यक्ष' निर्यात भी हुआ है, जिसकी कीमत ब्रिटिश सरकार ने देना स्वीकार किया है । सन् १९४२ के अन्त तक ऐसी रकम का कुल जोड़ ५०५ करोड़ रुपए था।

इस तरह १९२९-३० से आजतक हमने ब्रिटेन को १४०० करोड़ रुपयों से अधिक का माल दिया है, जिसके बदले में हमें कोई ठोस चीज नहीं मिली है। इससे हमारा स्टर्लिंग-ऋण लगभग साफ हो गया है और हिन्दुस्तान अब कर्जदार से साहूकार देश बन गया है।

यह कहना मुश्किल है कि विदेशों में हमारी कितनी रकम जमा है। हमें इतना मालूम है कि जनवरी १९४३ तक रिजर्व बैंक के पास ४४१ करोड़ रुपये के स्टर्लिंग थे, और दूसरी ओर हमें कुछ स्टर्लिंग का देना भी था। किन्तु इनके सिवा और भी रकमें हैं, जिनका सही अन्दाजा हम नहीं लगा सकते। उदाहरण के लिए, हिन्दुस्तान की जमा रकम पर एक्सचेंज बैंक विदेशों में जो रुपया उधार देती हैं उसका अन्दाजा हम नहीं लगा सकते, और न यही जान सकते हैं कि हिन्दुस्तान में बीमे का काम करनेवाली विदेशी कम्पनियों का कितना रुपया कहां लगा है और किस तरह उनका उपयोग किया जाता है। आज तक इस सम्बन्ध के आंकड़े रहस्य ही बने रहे हैं, और इसे जानने की कोशिशें हमेशा बेकार हुई हैं । दूसरी ओर अंग्रेज पूंजीपतियों की यहां के व्यापार में लगी रकमें हैं, जिनके बारे में कई तरह के

अंदाज लगाए गए हैं। मेरा खयाल है कि ऐसी रकम २० करोड़ पौंड या २६७$\frac{2}{3}$ करोड़ रुपयों से ज्यादा नहीं है।

जो भी हो, एक बात स्पष्ट है कि देने की अपेक्षा हमारा पावना ज्यादा है, और उसके फलस्वरूप हमारा देश अब साहूकार देश हो रहा है।

देश ग़रीब ही रहा

लेकिन इससे क्या वास्तव में हमारी खुशहाली जाहिर होती है? काश, ऐसा ही होता! सच तो यह है कि यह हमारी खुशहाली का परिचायक नहीं है। हमारे देश के कर्जदार से साहूकार हो जाने पर भी हमारी दरिद्रता, हमारे अभाव, और हमारे कष्ट कम नहीं हुए, बल्कि पहले से भी ज्यादा बढ़ गए हैं।

ऐसा क्यों? भूखे रह कर ही हमने ये स्टर्लिंग जमा किए हैं। इंगलैंएड को हमने अपनी बचत स्वेच्छा से नहीं दी है, बल्कि हमें विवश होकर देना पड़ा है। हमारे रहन-सहन का स्टैंडर्ड पहले ही काफी नीचा था, लेकिन इंगलैंड की मनचाही जरूरतें पूरी करने के लिए, हमें इसे और भी नीचे गिराना पड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि हमारे यहां हर तरह के माल की खपत कम हो गई, जिसमें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक चीजें भी शामिल हैं।

पहले जीवन की दो सबसे बड़ी आवश्यकताओं को ही हम लेते हैं—यानी भोजन और कपड़ा। इनके बारे में हमारी क्या स्थिति है? जहांतक कपड़े का सम्बन्ध है, सन् १६३६-४० से हमारी स्थिति लगातार खराब होती चली जा रही है। मिल में बने कपड़े को ही फिलहाल हम देखते हैं तो सन् १६४२-४३ में नागरिकों को (सैनिकों को छोड़कर) केवल २३,००० लाख गज कपड़ा मिला, जब कि १६३८-३६ में ४६,३४४ लाख गज मिला था। यह लगभग ५० प्रतिशत की कमी है।

लोगों को पहनने को कपड़ा ही कम नहीं मिलता, बल्कि खाने को नाज भी कम मिलता है। सरकार की ओर से इस बात का ढिंढोरा पीटा जाता है कि अधिक अन्न उपजाने के लिए सरकार की ओर से जो आन्दोलन किया गया है उसमें कामयाबी मिली है। लेकिन इसके बावजूद भी खाद्य-सामग्री-सम्बन्धी स्थिति को देखकर देश के बहुसंख्यक लोग, जो चिन्तित हो रहे हैं, वह ठीक ही है।

सावधानी के साथ लगाए गए एक हिसाब से मालूम होता है कि १६३५ में इस देश में नाज की पैदावार पूरी आबादी के लिए काफी नहीं थी। प्रायः ५ करोड़ आदमियों का गुजारा विदेशी अन्न से ही हो सकता था। तबसे स्थिति और खराब ही हुई है। बर्मा, थाईलैण्ड और हिन्द-चीन से जो ११ लाख टन से २६ लाख टन तक चावल आता था वह अब नहीं आ सकता। इधर जब कि आयात बन्द हो गया है, हमारी आवश्यकताएं बढ़ गई हैं। सिर्फ हिन्दुस्तान में ही ज्यादा आदमियों को नहीं खिलाना पड़ता, बल्कि बाहर भी लोगों के लिए अन्न भेजना पड़ता है। लंका और अरब आदि, जो देश पहले बर्मा से चावल मंगाते थे, अब उनके लिए सिर्फ हिन्दुस्तान पर निर्भर करते हैं। नाज की कमी की हालत और बिगड़ने का एक बड़ा कारण यहां की, और दूसरी जगहों की, फौजी जरूरतें भी हैं।

सरकार ने हाल में यह कहा है कि १६४३ में खाद्य-पदार्थों का कुल अभाव २० लाख टन—यानी कुल पैदावार के ४ प्रतिशत से अधिक न होगा। लेकिन ऐसे मामलों में आंकड़ों से सारी हकीकत मालूम हो जाती है, यह मैं नहीं मानता। यह कमी तो कहीं ज्यादा है; क्योंकि यह ४ सैकड़े की कमी सैनिक और नागरिक लोगों पर एक-सी लागू नहीं है। नागरिकों के लिए यह कमी कहीं ज्यादा है। इसका अर्थ यह हुआ कि "४ प्रतिशत कमी" से जितना अभाव मालूम पड़ता है वास्तविक अभाव उससे कहीं ज्यादा है।

आंकड़े अगर आसानी से मिल सकते तो जीवन की दूसरी आवश्यकताओं की कमी के बारे में भी ऐसा ही हाल मालूम पड़ता। इसलिए यह तय बात है कि जो स्टर्लिंग हम इंगलैण्ड में बचत के बतौर जमा कर सके हैं वह रकम हमारे जीवन की कई आवश्यकताओं के अपूर्ण रहने और हमारे भूखे रहने के कारण ही जमा हो पाई है।

जब यह हाल है तो दुर्दिन के समय रक्षा के लिए हम अपनी बचत को सुरक्षित न रख सकें तो यह हमारा एक घोर अपराध होगा; क्योंकि यह निश्चित है कि जल्दी या देर से कभी दुर्दिन आयगा अवश्य।

तुलना

दूसरी बातें कहने के पहले यह बतला देना ज्यादा अच्छा होगा, कि ऐसी परिस्थिति अपनी स्टर्लिंग की जमा रकम के सम्बन्ध में दूसरे देशों ने क्या किया। पहले हम स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों को ही लेते हैं, जिन्हें डोमीनियन कहा जाता है।

जिसे स्टर्लिंग-क्षेत्र कहते हैं उसके सदस्यों में, यानी जो अपना वैदेशिक कोष या रिजर्व स्टर्लिंग में रखते हैं उनमें, किसी डोमीनियन या क्राउन कॉलोनी का स्टर्लिंग रिजर्व हिन्दुस्तान के बराबर नहीं है। जनवरी के अन्त में भारतीय समाचारपत्रों में 'रायटर' का निम्न आशय का तार छपा था:—

"भारतीय रेलवे कम्पनियों के ३१० लाख पौंड के डिबेंचर हाल में चुका दिए गए हैं, पर यह रकम भारत-सरकार के संचित स्टर्लिंग का एक अंशमात्र है। स्टर्लिंग की यह बचत ८ जनवरी १९४३ को समाप्त होनेवाले वर्ष में २,१४२ लाख पौंड से बढ़कर ३,०८३ लाख पौंड हो गई, यद्यपि पिछले १२ महीनों में बहुत-सा ऋण चुकाया गया, जिसमें ५ जनवरी को चुकाया गया ६०० लाख पौंड का ऋण भी

शामिल है। दूसरे देशों के भी स्टर्लिंग जमा हो रहे हैं। पिछले बारह महीनों के ताजा आंकड़ों से मालूम होता है कि आॅस्ट्रेलिया का स्टर्लिंग-संग्रह ३६० लाख पौंड से ५६० लाख पौंड हो गया, न्यूजीलैण्ड का १२० लाख पौंड से २५० लाख पौंड और आयर (आयर्लैण्ड) का १८० लाख पौंड से ६३० लाख पौंड। दक्षिण अफ्रिका एक अपवाद है। यह अपनी बचत सोने में रखता है, इसलिए स्टर्लिंग की बचत कुछ नहीं के बराबर है।"

उपर्युक्त तार से मालूम होता है कि हिन्दुस्तान को छोड़कर स्टर्लिंग-क्षेत्र के सदस्य अपनी थोड़ी मुद्दत की जरूरतों के लिए कम-से-कम स्टर्लिंग लन्दन में रखते हैं। दक्षिण अफ्रिका स्टर्लिंग में कुछ न रखकर सोने में अपनी बचत रखना पसन्द करता है। बचत से मेरा मतलब उस रकम से है, जो दक्षिण अफ्रिका के स्टर्लिंग-ऋण और वहां लगी हुई ब्रिटिश पूंजी को चुकाने के बाद बचती है। वहां लगी ब्रिटिश व्यापारिक पूंजी की चुकाई शुरू हो चुकी है, और संभव है कि युद्ध के अन्त तक ऐसी सारी पूंजी चुक जाय।

कैनेडा तो स्टर्लिंग-क्षेत्र का सदस्य तक नहीं है, यद्यपि इसने अपनी बचत का एक हिस्सा स्टर्लिंग में रखना स्वीकार किया है। युद्ध के प्रारम्भ से मार्च १९४२ के अन्त तक कैनेडा में ब्रिटेन को १८,७०० लाख डॉलर का देना हो गया था, जिसको इस तरह निपटाया गया:—

ब्रिटेन ने कैनेडा को सोना दिया	२,५०० लाख डॉलर
सरकारी ऋण चुकाया	७,१४० लाख डॉलर
ब्रिटिश व्यापारियों की लगी पूंजी चुकाई	१,२६० लाख डॉलर
स्टर्लिंग बचत जो उधार दी गई	७,००० लाख डॉलर
स्टर्लिंग बचत जो दान दी गई	८०० लाख डॉलर
	१८,७०० लाख डॉलर

इस उपनिवेश ने, स्वातन्त्र्य-उपभोग के कृतज्ञतास्वरूप और अपनी खुशहाली के कारण अपने मूल देश को सहायता दी उसे नगण्य सिद्ध करने की मुझे कोई इच्छा नहीं है, पर इस सम्बन्ध में कुछ बातें मैं अवश्य कहना चाहता हूं।

पहली बात तो यह है कि कैनेडा के १८,७०० लाख डॉलर मोटे तौर पर हमारे ५६१ करोड़ रुपयों के करीब होते हैं, और अगर ठीक तरह से विचार करना है तो यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि मित्र-देशों को हिन्दुस्तान ने जो माल और सेवा दी उसकी कीमत सन् १९४२ के अन्त तक ५०५ करोड़ रुपए हुई थी और हिन्दुस्तान को यह रकम स्टर्लिंग में लेनी पड़ी। निस्संदेह तबसे यह रकम और बढ़ी ही है।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए विचार करने पर साफ मालूम पड़ता है कि ब्रिटेन और कैनेडा के बीच जो लेन-देन का तसफिया हुआ है और कैनेडा ने ब्रिटेन की जो मदद की है उसमें उसने, स्वयं अपने एक नेता के शब्दों में, आदर्शवाद और पक्की व्यापारिक बुद्धि से काम लिया है। कैनेडा ने कुछ भुगतान सोने में लिया है। इसके अलावा उसने न केवल काफी सरकारी ऋण, बल्कि कैनेडा में लगी अंग्रेजों की व्यापारिक पूंजी भी चुकता कर दी है। इसके बाद भी जो रकम बाकी रह गई उसमें से कुछ तो उसने अपने सबसे अच्छे ग्राहक देशको कर्ज दे दिया और बाद में १०,००० लाख डॉलर, जो ३०० करोड़ रुपयों के बराबर होते हैं, दान दे दिया।

यह तो हुई साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण देशों की बात; अब साम्राज्य के बाहर, अर्जेण्टाइन-जैसे देशों की बात लीजिए, जिनके साथ यह समझौता हो गया है कि वे स्टर्लिंग में भुगतान लेंगे। अर्जेण्टाइन के साथ जो समझौता हुआ था उसके अनुसार यह निश्चित था कि १०,००,०००

डॉलर से ज्यादा अर्जेंएटाइन की जो भी बचत रकम इंग्लैएड के जिम्मे निकलेगी, वह सोने में बदल दी जायगी। सन् १६४० में एक दूसरे समझौते द्वारा इस व्यवस्था को बदल दिया गया। नए समझौते के अनुसार इंग्लैंड ने यह शर्त मंजूर कर ली है कि अगर कभी डॉलर के मुकाबले स्टर्लिंग की कीमत गिर जायगी, तो हर्जाना देकर अर्जेंएटाइन को घाटे की रकम पूरी कर दी जायगी। यह वस्तुतः सोने की गारएटो है, जिससे स्टर्लिंग-सम्बन्धी सारी वर्तमान और भावी स्थिति अर्जेंएटाइन के पक्ष में हो जाती है।

ऊपर बताई गई बातो से स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान के साथ खास ढंग का व्यवहार किया गया है और उसे इस बात के लिए मजबूर किया गया है कि अपने माल और काम के बदले भारी परिमाण में स्टर्लिंग ले, जबकि उसे यह आश्वासन भी नहीं दिया गया कि माल या सोने के मुकाबले स्टर्लिंग की कीमत गिरी तो उसके स्वार्थों की रक्षा की जायगी।

भारत की अनोखी देन

इँगलैएड के 'इकोनोमिस्ट' पत्र ने जनवरी में लिखा था कि इंगलैण्ड में, साम्राज्य के अन्दर और बाहर के देशों का कुल ६,००० लाख स्टर्लिंग जमा है' जिसका प्रायः आधा भाग, जैसा मैं अभी बता चुका हूं, हिन्दुस्तान का है। इससे यह पता चलता है कि इस देश ने ब्रिटेन के लिए अपने स्वार्थों की किस कदर बलि देकर, सिर्फ उधार पर माल और सेवाएं देने के रूप में ब्रिटेन युद्ध-उद्योग की सहायता की है।

हमने जो सहायता दी वह हर तरह महत्त्वपूर्ण है; साथ ही, अनोखी भी है, क्योंकि हमने यह सहायता भूखे पेट रह कर की है। कैनेडा, ऑस्ट्रेलिया या दक्षिणी अफ्रिका जैसे देशों का रहन-सहन हमसे कहीं ऊंचा रहा है, और उनके पास दैनिक जीवन के उपयोग में आनेवाला माल भी ज्यादा था। इसलिए स्वभावतः कमखर्ची या स्वार्थ-त्याग करने की उनके

पास ज्यादा गुंजाइश थी। उन्हें अपनी जरूरतें कम करने में वैसा त्याग नहीं करना पड़ा, जैसा कि हिन्दुस्तान को। इसे तो मित्र-राष्ट्रों के युद्ध-उद्योग में इतने बड़े पैमाने पर सहायता करने के लिए अपने को अधपेट और भूखा रखना पड़ा। विभिन्न उपनिवेशों और मातहत देशों द्वारा मित्र-राष्ट्रों को दी गई सहायता के तुलनात्मक अध्ययन में इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए।

इस सवाल का एक दूसरा पहलू भी है। साधारणतः ऐसी सहायता या युद्ध-उद्योग का हिसाब रुपयों में लगाया जाता है। परन्तु इससे अधिक न्यायपूर्ण तरीका मानव-श्रम के दृष्टिकोण से इसका हिसाब लगाना होगा। इस आधार पर हिसाब लगाया जाय तो अनायास ही हिन्दुस्तान का नम्बर पहला होगा, और इसकी सहायता ऐसी निकलेगी जिसका कोई मुकाबला नहीं कर सकेगा।

मैंने कैनेडा की १०,००० लाख डॉलर की भेंट का जिक्र किया है। कुछ लोग ऐसा कह सकते हैं कि हम भी उसका अनुसरण करें। मैं चाहता हूं कि हमारी परिस्थिति जैसी है उससे भिन्न होती और हमारे लिए यह उपहार ऐसी वस्तु होती जिसका त्याग करना हिन्दुस्तान मुश्किल न समझता। परन्तु वर्तमान दयनीय अवस्था में हमारे देश की इस तरह दान करने की क्षमता कहां है? फिर भी, यह न भूलना चाहिए कि जैसी स्थिति है उसमें भी हिन्दुस्तान माल और सेवाएं बाजार से बहुत नीचे दाम पर दे रहा है। पाट का बना माल, सीमेण्ट, इस्पात, कपड़ा और कई दूसरी चीजें जिन दामों पर खरीदारों को मिलती हैं उनसे कहीं कम दामों पर ब्रिटेन को दी जा रही हैं। साधारण खरीदारों की अपेक्षा जिस कदर कम दाम पर हम ब्रिटेन को माल देते आ रहे हैं उसीमें हमारा दान छिपा हुआ है, जिसकी कीमत रुपयों में अभी कूती तक नहीं गई है। परन्तु इससे

हमारी सहायता कम नहीं हो जाती, और इसका महत्त्व तो उपयुक्त रूप में स्वीकार किया ही जाना चाहिए।

इसके साथ ही, जब हम भारत की देन का अनुमान लगाने बैठें तो, भारत या अमेरिका के बाजारों में प्रचलित भावों से कहीं नीचे भावों पर बेची जानेवाली भारत की चांदी का भी हमें हिसाब लगाना होगा। इस तरह जो करोड़ों की चांदी बेची गई है, उसके सही आंकड़े उपलब्ध नहीं हो रहे हैं, यह निस्सन्देह दुख की बात है।

हमारी मांग

अब सवाल यह है कि हम चाहते क्या हैं—अपनी स्टर्लिंग बचत की हम किस प्रकार अच्छी तरह रक्षा कर सकते हैं ?

ब्रिटिश सरकार से हमारी पहली मांग यह होनी चाहिए कि हमारी स्टर्लिंग की बचत रकम, जो अभी है या बाद को इकट्ठी होगी, किसी तरह नष्ट न की जायगी, इसका वह हमें आश्वासन दें।

पिछली लड़ाई का अनुभव इस सिलसिले में सर्वथा सुखद नहीं कहा जा सकता। यह बात छिपी नहीं है कि पिछली लड़ाई के बहुतसे खर्च, जो ब्रिटिश सरकार को देने चाहिए थे वे हिन्दुस्तान के मत्थे मढ़े गए। अगर हिन्दुस्तान अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर सकता, तो जितनी रकम उसे लड़ाई के खर्च के हिसाब में मिली थी उससे कहीं ज्यादा रकम मिलती। परन्तु जो मिला था वह भी बाद में यों ही बन्दरबांट में गायब हो गया।

सन् १९१९ में, यानी युद्ध के कुछ दिन बाद, हिन्दुस्तान के पास सोने और स्टर्लिंग में १२२॥ करोड़ रुपए थे। घोर विरोध होने पर भी इसका एक खासा भाग नकली विनिमय-दर बनाए रखने में स्वाहा कर दिया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि १९१९ के १२२॥ करोड़ सन्

१९३१ में घटकर सिर्फ ४।। करोड़ रह गए, और हमारा स्टर्लिंग-ऋण १९१९ के ३०४ करोड़ से बढ़कर सन् १९२९ में ४७२ करोड़ हो गया। अगर हिन्दुस्तान सावधान न रहा तो इतिहास की पुनरावृत्ति हो सकती है। अतः हमें बराबर सावधान रहना चाहिए और यह मांग करनी चाहिए कि जिस खर्चे से हमारी अपनी सीमाओं की रक्षा का सीधा सम्बन्ध नहीं है वह हिन्दुस्तान के नाम न लिखा जाय; किसी भी काम के लिए हमारे स्टर्लिंग की बचत अलग न की जाय; और न तो भविष्य में पेंशन चुकाने के लिये आज ही ब्रिटिश सरकार को एक मोटी रकम दे दी जाय और न युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण के लिए कोई रकम नियत की जाय। हमारी रकम पर हमारा पूरा कब्जा रहे, क्योंकि हमारी रकम हमारी अपनी है। किसीको हमसे यह कहने का अधिकार न होना चाहिए कि अपने कोष का हम क्या करें, या क्या न करें। इस मामले में इससे कम कुछ भी हमको स्वीकार नहीं हो सकता।

परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात इस बात की सावधानी रखना है, कि भविष्य में हमारे बचे हुए स्टर्लिंग की कीमत कम न हो जाय। लड़ाई के बाद स्टर्लिंग या डॉलर की क्या स्थिति होगी, यह कोई नहीं कह सकता। और चूंकि हिन्दुस्तान स्टर्लिंग का जुआ नहीं खेल सकता, इसलिए यह जरूरी है कि इंगलैंड में इसने जो रकम पेट काटकर इकट्ठी की है उसकी अन्तर्राष्ट्रीय एक्सचेंज के बाजार की गड़बड़ से पूरी रक्षा की जाय।

स्टर्लिंग में हमारी जो इतनी रकम इकट्ठी हुई है वह हमारी इच्छा से नहीं हुई है। अपने माल के बदले हमने स्टर्लिंग इसीलिए लेना स्वीकार किया कि इंगलैण्ड दूसरे रूप में देने को तैयार नहीं था। वह चाहता तो कुछ हिस्सा सोने में दे सकता था—(पर हमारे सोने के बदले में भी स्टर्लिंग मिला), कुछ डॉलर में (पर हमारे अमेरिका के व्यापार की बचत रकम के

बदले में मिले डॉलर भी स्टर्लिंग में बदल दिए गए), और कुछ माल के रूप में। परन्तु उसने वही तरीका चुना, जो उसके लिए सबसे लाभप्रद था, यानी स्टर्लिंग में देने का—जो कि हिन्दुस्तान के प्रति अत्यन्त अन्यायपूर्ण है।

इस तरह नैतिक दृष्टि से इंगलैण्ड पर हिन्दुस्तान का ऋण स्टर्लिंग में नहीं, बल्कि माल के रूप में है। और सही रूप में कहें तो यह ऋण मानव-श्रम के रूप में है। हिन्दुस्तान ने बड़ी मेहनत से माल तैयार किया और उसे इंगलैंड को दे दिया। इसीलिए वह न्यायतः यह मांग कर सकता है कि जितने मानव-श्रम का माल उसने इंगलैंड को दिया उतने ही मानव-श्रम का माल उसको बदले में मिलना चाहिए। सबसे कम मांग जो वह कर सकता है वह यह है कि मानव-श्रम के हिसाब से स्टर्लिंग का दाम न गिरने पाए, इसकी पूरी गारण्टी मिले।

स्टर्लिंग के दाम गिरने की सम्भावना से हिन्दुस्तान को किस तरह संरक्षित रखा जा सकता है? इसके तीन तरीके हैं—

(१) हमारे स्टर्लिंग सोने में बदल दिए जायं;

(२) डॉलर में बदल दिए जायं; अथवा

(३) माल में बदल दिए जायं।

आइए, इनमें से प्रत्येक की जरा परीक्षा करें!

युद्ध के बाद सोने की क्या स्थिति होगी, यह बिलकुल अनिश्चित है। युद्ध के बाद भी सोने का महत्त्व रहेगा, परन्तु हो सकता है कि बिलकुल आज का-सा न रहे। जिस तरह विज्ञान की उन्नति हो रही है उससे भविष्य में किसी परिस्थिति में सोने की पूछ कम हो जाय तो किसीको आश्चर्य न होना चाहिए। सोने को मूल्य आदमी ने दिया, और वह चाहे तो वापस भी ले सकता है। अमेरिका के तहखानों में सोने की भरमार है,

इसलिए इसका वर्तमान महत्त्व बनाए रखने में उसका स्वार्थ है। परन्तु क्या चीन और रूस भी इसी तरह या इसी हद तक इसका महत्त्व बनाए रखना चाहेंगे? इसमें सन्देह है!

इसलिए सोने के साथ अपनी स्टर्लिंग-बचत का गंठबन्धन करना ठीक न होगा।

माल के हिसाब से डॉलर का भी भविष्य उतना ही अनिश्चित है, जितना कि स्टर्लिंग का। संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) की जिंसों का इंडेक्स नम्बर (सूचक अंक) काफी बढ़ चुका है। मूडी के नामसे चलने वाले इंडेक्स नम्बर से पता चलता है कि सन् १९३१ में जहा वह १०० था, वहां पिछले ८ दिसम्बर को वही बढ़ कर २३५.५ हो गया था। इसलिए हमें अपनी स्टर्लिंग-बचत को डॉलर में भी नहीं बदलना चाहिए; क्योंकि स्वयं डॉलर की कीमत घट रही है और किसी समय और भी घट सकती है।

इस प्रश्न के सारे पहलुओं पर विचार करने के बाद मुझे मालूम पड़ता है कि सबसे अच्छा संरक्षण यह हो सकता है कि हमारे स्टर्लिंग का गंठबन्धन इंगलैण्ड की जिंसों के इंडेक्स नम्बर से कर दिया जाय।

इसका क्या मतलब होता है, यह समझ लेना चाहिए। इस समय इंगलैण्ड में इंडेक्स नंबर लगभग १३५ होगा, जिसका मतलब यह है कि लड़ाई शुरू होने से अबतक चीजों के दाम ३५ प्रतिशत बढ़ गए हैं। जिस समय हमने अपना माल इंगलैण्ड को दिया होगा उस समय औसत इंडेक्स नम्बर लगभग १२५ रहा होगा। तर्क के लिए मान लिया जाय कि हमारी स्टर्लिंग-बचत का सम्बन्ध इंडेक्स नम्बर १२५ से हो गया, तो युद्ध के बाद यदि स्टर्लिंग के दाम गिरें और इंडेक्स नम्बर बढ़करर २५० भी हो जाय, तो हमारी स्टर्लिंग-बचत अपने-आप ही दूनी हो जायगी और

स्टर्लिंग की गिरी हुई क्रय-शक्ति का उसपर कोई असर न होगा। इस तरह इंडेक्स नम्बर हमारे लिए एक ढाल रहेगा और स्टर्लिंग के मूल्य की घटा-बढ़ी का हमपर कोई असर न होगा।

स्टर्लिंग के दाम गिरने और समझौते के अनुसार हमारी स्टर्लिंग-बचत के दूने हो जाने से मुद्रा के हिसाब से हिन्दुस्तान अधिक रुपयों का पावनेदार हो जायगा, और इंगलैण्ड अधिक कर्जदार बन जायगा। पर क्या इसका अर्थ भारत का लाभ, और इंगलैण्ड का नुकसान है?

नहीं।

इसका मतलब तो केवल इतना ही होता है कि आज अपने स्टर्लिंग के बदले हिन्दुस्तान को जितना माल मिल सकता है, स्टर्लिंग की कीमत गिर जाने पर भी उसे उतना ही मिलेगा। हमने जो माल दिया उसका दाम इंगलैण्ड स्टर्लिंग में आंकता है। चीजों की कीमत तय करने के लिए इस तरीके से हमें विशेष प्रेम नहीं है। माल और सेवा की कीमत लगाने के दूसरे भी तरीके हो सकते हैं। अगर हम इस बात पर जोर न दें कि जितना माल हमने दिया, वापस मिलने का समय आने पर हमें उससे कम न दिया जाय, तो हम अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक झगड़ों के दलदल में फँस जायंगे जिनपर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा। माल की माल के रूप में कीमत तय करने का कोई पूर्ण तरीका नहीं है, परन्तु वर्तमान अवस्था में इंडेक्स नम्बर से कीमत तय करना ही सबसे अच्छा तरीका मालूम होता है। अगर इस मांग के मूलभूत सिद्धात को स्वीकार कर लिया जाय तो सम्भव है कि विशेषज्ञ इसे और उन्नत बना सकें। जो भी हो, विनिमय के झगड़े में हम पड़ना नहीं चाहेंगे। इसलिए हमें इसी बात का आग्रह करना चाहिए कि जब भुगतान का समय आए तो हमें उस माल से कम न मिले, जितना कि हमें उस समय मिलता जब हमने इंगलैण्ड को अपना माल बेचा था।

अब हम लोग यह भी विश्लेषण करें कि किस तरह कर्जदार राष्ट्र साहूकार राष्ट्र को अपना कर्ज चुकाता है। वह या तो सोना-चांदी भेज सकता है, या माल, अथवा अपनी सेवाएं अर्पण कर सकता है। जब इंगलैण्ड हमारा कर्ज चुकाना चाहेगा तो उसे इन्हींमें से कोई बात करनी पड़ेगी। स्पष्टतः हमें अंग्रेजों की "सेवाओं" की बिलकुल जरूरत नहीं है, क्योंकि पहले का अनुभव ही काफी कटु है। हम या तो सोना-चांदी ले सकते हैं, या माल--बहुत करके माल पैदा करने का सामान हम पसन्द करेंगे, जिसकी कि लड़ाई के बाद हमें जरूरत होगी। परन्तु हम यह नहीं चाहते कि कर्जदार देश होने का इंगलैण्ड फायदा उठाए और वह इतने ज्यादा दाम अपने माल के मांगे, जो हमारे माल की उस समय की कीमत से मेल न खाए जबकि हमने माल दिया था।

लन्दन के एक अर्थशास्त्री ने एक योजना तैयार की है; परन्तु उसमें अपना नाम गुप्त रक्खा है। इस योजना को लन्दन के बड़े व्यापारियों का सहयोग प्राप्त है, और शायद ब्रिटिश सरकार का भी। इस योजना में लड़ाई के बाद एक अन्तर्राष्ट्रीय 'क्लीयरिंग हाउस' की व्यवस्था है, जो सारे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और विनिमय का इंतजाम एवं नियन्त्रण करेगा। इसके सिवा देश के अन्दर के बाजारों में दामों को स्थिर रखने की भी इसमें सिफारिशें हैं। यह सारी योजना इंगलैण्ड और अमेरिका को ध्यान में रखकर बनाई गई है। एशिया अथवा भारत का इसमें कोई स्थान नहीं। योजना का मुख्य सिद्धान्त यह है कि लड़ाई के बाद साहूकार देश कर्जदार देशों का माल युद्ध के कर्जों के बदले में स्वीकार करे। इस योजना से जान पड़ता है कि इंगलैण्ड इसके जरिए अमेरिका का मनोभाव जानना चाहता है। मान लीजिए अमेरिका ने इंगलैण्ड से यह कह दिया कि—

"पेसो (दक्षिण अमरीकी सिक्के), मार्क, फ्रैंक और स्टर्लिंग हमारे

लिए बेकार हैं, क्योंकि ये तो अपने ही देशों में कानूनी मुद्रा है, और मैं तुम्हारा सामान भी खरीदना नहीं चाहता। तुम्हारी जिम्मेदारी तो यह है कि मुझे मेरी मुद्रा यानी डॉलर में भुगतान करो। मैं यह जानता हूं कि तुम डॉलर नहीं बनाते, और इन्हें तुम हमारे यहां माल बेचकर ही पा सकते हो। पर मैं चुंगी की दीवार खड़ी करके चाहे तुम्हारे यहां से आनेवाले माल की हद बांध कर तुम्हारा यह काम रोकना चाहता हूं। तुम चाहोगे यहां माल बेच कर भुगतान करना, और मेरी चेष्टा यह होगी कि इसमें तुम्हें सफलता न हो। अगर तुम विफल हुए तो ईश्वर ही तुम्हें बचा सकेगा! क्योंकि उस हालत में मैं विदेशी विनिमय के बाजार में तुम्हारी मुद्रा बेचना शुरू कर दूंगा, ताकि जो कुछ मिले, मिल जाय और तुम्हारी विनिमय-दर गिरकर तुम्हारे यहां अनियन्त्रित मुद्रा-प्रसार हो जाय। दूसरा उपाय यह है कि तुम मुझसे चक्रवृद्धि ब्याज पर कर्ज लो। इससे बला सिर्फ कुछ दिनों के लिए टल जायगी। हां, जब कभी आयगी तब और भी भयंकर रूप में।"

उस हालत में स्टर्लिंग के भविष्य, अपने रहन-सहन के स्टैण्डर्ड और अमेरिका के साथ अपनी मैत्री के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड को जो चिन्ता होगी उसे हर कोई समझ सकता है। मेरी उससे पूरी सहानुभूति है। परन्तु यदि इंग्लैण्ड अमेरिका को माल देने की सुविधा चाहता है, तो हम भी इंग्लैंड से यह आग्रह क्यों न करें कि "हम तुम्हारा माल चाहते हैं—सामान पैदा करनेवाला माल या साधन चाहते हैं, स्टर्लिंग के बंडल नहीं; जिनकी कि कीमत निश्चित नहीं है। हम कोई अन्यायपूर्ण मांग नहीं करना चाहते। हम जो चाहते हैं वह यही है कि तुम्हारे स्टर्लिंग की कीमत गिरने से तुम अपना भुगतान देने से न बचो, और स्टर्लिंग के बजाय माल के रूप में अपना कर्ज हमने निश्चित किया होता तब जितना माल हमें मिलता

उससे सिर्फ आधा या एक-चौथाई ही देकर न टाल दो।"

कुछ लोग पूछते हैं कि क्या ऐसा कोई प्रबन्ध सम्भव है? मैं कहता हूँ कि हां, यह बिल्कुल सम्भव है।

'रायटर' के संवाददाता ने १७ मार्च को एक तार में युद्ध के बाद की करेंसी-सम्बन्धी समस्याओं पर इंगलैण्ड और अमेरिका में हुई बातचीत की आलोचना करते हुए बड़ी दिलचस्प बात लिखी थी। वह यह थी:—

> "कुछ आलोचकों का प्रस्ताव है कि एक्सचेंज की घटाबढ़ी की जोखिम न रहने दी जाय, ताकि जिन देशों को बचत की उम्मीद हो वे इस योजना को स्वीकार कर सकें। सिद्धान्ततः यह जोखिम मिटाई जा सकती है और ब्रिटेन का अर्जेण्टाइन के साथ जो बन्दोबस्त है—जिसके अनुसार ब्रिटेन ने यह बात मानली है कि स्टर्लिंग का दाम जितना गिरेगा उतना ब्रिटेन पूरा कर देगा ताकि अर्जेण्टाइन को अपनी स्टर्लिंग की बचत रकम में सोने के दाम के मुकाबले नुकसान न हो—उसका अनुसरण किया जा सकता है।"

विनिमय में घटा-बढ़ी का खतरा मिटाया जा सकता है, ऐसा कुछ विशेषज्ञ कहते हैं। मैं स्टर्लिंग के बदले माल लेने के सम्बन्ध में ठीक यही कहता हूँ।

अर्जेण्टाइन के स्टर्लिंग का अगर सोने से गंठबन्धन हो सकता है तो हिन्दुस्तान के स्टर्लिंग का गंठबंधन सामान पैदा करनेवाले माल या साधनों के इंडेक्स नम्बर के साथ क्यों नहीं हो सकता? सोना एक कीमती जिंस के सिवा कुछ नहीं है। इसलिए जिस तरह अर्जेण्टाइन की स्टर्लिंग-बचत की रकम का सम्बन्ध सोने से कर दिया गया उसी तरह हमारे स्टर्लिंग का इंडेक्स नम्बर से सम्बन्ध कर देने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

आप पूछ सकते हैं कि ये सारी बातें तो स्टर्लिंग की कीमत गिर जाने की संभावनाओं को दृष्टि में रखकर कही गई हैं; लेकिन अगर स्टर्लिंग की कीमत बढ़े तो ? ऐसे समय में जब कि विनाश का चक्र दिन-रात चल रहा है और भविष्य अन्धकारपूर्ण और अनिश्चित है, जब कि संसार के विचारक यह सोचने में लगे हैं कि लड़ाई के बाद गरीबी, बेकारी और संघर्ष की समस्याओं का कैसे हल हो सकेगा, और लोग भविष्य को घबराहट और भय की दृष्टि से देख रहे हैं —स्टर्लिंग की कीमत बढ़ने की बात बेवकूफी नहीं तो और क्या है ? यह तो वही बात हुई कि कोई बुड्ढा नौजवान बन जाय तो क्या हो ? कोई पागल ही ऐसी बात कर सकता है। अगर कोई चमत्कार हुआ और स्टर्लिंग का मूल्य बढ़ ही गया तो क्या होगा ? इंगलैण्ड को इसकी खुशी मुबारक हो। अगर ऐसी असम्भव घटना घटी तो हम भी उसके साथ इसकी खुशी मनायेंगे !

मैं पहले ही बता चुका हूँ कि जनवरी में रिज़र्व बैंक के पास ४४१ करोड़ रुपए के स्टर्लिंग थे। यदि सारा सरकारी ऋण और हिन्दुस्तान में लगी अंग्रेज व्यापारियों की सारी पूंजी चुका दी जाय तो यह रकम काफी कम हो जायगी। जो सरकारी और अर्द्धसरकारी स्टर्लिंग ऋण है उसकी अदायगी शुरू हो भी गई है; पर उचित यह है कि हिन्दुस्तान में लगी अंग्रेजों की व्यापारिक निजी पूँजी भी चुका दी जाय, जिससे हमारी स्टर्लिंग की रकम कम हो जाय और स्टर्लिंग का माल से गँठबन्धन करने में जो खतरा होगा वह भी कम हो जाय। कैनेडा और दक्षिण अफ्रिका में यही हुआ है। हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में वही बात करने से इंगलैण्ड न्यायतः कैसे इन्कार कर सकता है, जो वह कैनेडा और दक्षिण अफ्रिका के सम्बन्ध में बाध्य होकर स्वीकार कर चुका है ? अगर हमारी पराधीनता का अनुचित

लाभ उठाकर ऐसा करने से वह इन्कार कर दे तो इससे बढ़कर बेइन्साफी और क्या हो सकती है !

स्टर्लिंग का इंडेक्स नम्बर से सम्बन्ध करने का मतलब यह न समझना चाहिए कि युद्ध के बाद अमेरिका या किसी अन्य देश को हम इंगलैण्ड से अपनी बचत की रकम न भेज सकेंगे। इसका मतलब तो यही है कि उस माल के हिसाब से हमारी बचत की कीमत न कट जाय, जिसकी कि हमें युद्ध के बाद जरूरत होगी।

इसलिए हमें जो मांग करनी चाहिए वह यह है कि हिन्दुस्तान में लगी इंगलैण्ड की सारी पूँजी, व्यापारिक पूंजी समेत, वापस कर दी जाय और इसके बाद जो रकम बचे या आगे इकट्ठी हो वह एक सही इंडेक्स नम्बर से, जिसपर दोनों देश राजी हों, जोड़ दी जाय। ये इंडेक्स नम्बर, जब जब रकम जमा हो उस समय के अनुसार हों, ताकि हमें युद्ध के बाद जिन मालों की जरूरत हो वे ठीक दाम पर मिल सकें। यह भी विचार किया जाय कि इंगलैंड युद्ध के बाद एक खास अवधि के अन्दर हमारा कर्ज साफ करदे और हिन्दुस्तान पर ऐसा कोई स्पष्ट या अस्पष्ट बन्धन न हो, जिससे वह और किसी देश के बजाय केवल इंगलैण्ड से ही माल खरीदने के लिए वाध्य हो।

हमारी यह मांग केवल उस न्याय की मांग होगी जो हर हालत में हमारे साथ होना ही चाहिए।

मार्च, १९४३।

लेखक की अन्य

रचनाएं

१. बापू
२. डायरी के पन्ने
३. रुपये की कहानी
४. बिखरे विचार
५. ध्रुवोपाख्यान
६. श्री जमनालालजी

मूल्य
दो आना